४९: अन्तर्राष्ट्र में पूर्णता अथवा अखण्ड राष्ट्र में पूर्णता

दिनांक -१५/०१/२०१२

मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में एकरूपता अथवा सार्वभौमता ही अखण्ड राष्ट्र में पूर्णता है | इस उपलब्धि के लिये विकल्प ही एकमात्र रास्ता है | अभी तक मानव जात व्यक्तिवाद, समुदायवाद तक ही रह गया है | साथ ही एक दूसरे समुदाय के साथ वैर भी पाला है | इसका प्रमाण सीमा सुरक्षा का कार्यक्रम प्रत्येक समुदाय अथवा राष्ट्र के साथ प्रसिद्ध है | यही सर्वोपरि अपराध का कारण हुआ | मानव का मानव के साथ जो अपराध होता है यह बहुत बड़ी बात नहीं है, यह बदलता रहेगा | धरती के साथ जो अपराध होता है इसे सर्वाधिक मानव अथवा सर्वमानव भोगने के लिये बाध्य होता है | धरती के साथ अपराध करने वालों की संख्या कम दिखाई पड़ती है | भोगने वाले सर्वाधिक होना समझ में आता है | इस प्रकार मानव, राष्ट्रों के नाम से सभी अपराध कृत्यों को वैध मान चुका है जो अखण्ड समाज के विपरीत हो गया है | अभी तक के प्रयास में अखण्ड समाज का स्वरूप व्यापार माना जा रहा है | व्यापार सभी देशों के साथ होने की सम्भावना को स्वीकारा है | कुछ लोग इसमें निष्ठा भी रखते हैं; जबकि संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में एकरूपता ही अखण्ड समाज का आधार है | व्यापार विधि से ऐसी स्थिति नहीं बनती है, क्योंकि व्यापार स्वयं लाभोन्मादी होने के आधार पर अपने पराया का रास्ता बनाया रहता है | इन सभी बातोंको ध्यान में लाने पर, अखण्ड समाज कैसा हो? यही प्रश्न बनता है |

अखण्ड समाज के बिना सार्वभौम व्यवस्था होना सम्भव नहीं है | अभी भी समुदाय चेतना में बनी हुयी संविधान में सार्वभौमता की अपेक्षा है | इसके लिये विधि व्यवस्था का सूत्र, व्याख्या नहीं है | समुदाय चेतना विधि से सार्वभौमता होना सम्भव नहीं है | सार्वभौमता न होने की वजह से मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में एकरूपता सम्भव नहीं है | इसे सभी देश, सभी राष्ट्र, राष्ट्रीय त्योहारों में दोहराते रहते हैं | इस ढंग से हम अपने आप में कैसा फंसे हैं, समझ में आता है | इससे उबरने के लिये विकल्प विधि से चेतना विकास मूल्य शिक्षा का प्रस्ताव है |

विकल्प अपने में अनुसंधान विधि से प्रकट होता है | इसे कोई व्यक्ति ही प्रकट करता है | इसके आधार पर किया गया अध्ययन से सर्वाधिक लोगों के जीने का आधार बनता है | मानव परम्परा में जीना ही रहने का प्रमाण है | जड़, चैतन्य प्रकृति में क्रियाशीलता ही होने का प्रमाण है | जीव प्रकृति भी जड़ प्रकृति के सदृश रहने के पक्ष में शरीर को जीवन माना है | मानव भी जीव चेतना वश ही शरीर को जीवन मानता है | इसी भ्रम से मुक्त होना ही विकसित चेतना का उद्देश्य है | शरीर भौतिक, रासायनिक वस्तु से ही रचित रहता है | शरीर को जीवन मानना ही भ्रम का मूल कारण है | मानव को भ्रम से मुक्त होने के लिये विकसित चेतना को ही अपनाना होगा | विकसित चेतना में ही जीवन के अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व, व्यवहार के नियमों का ज्ञान होता है | इसी क्रम में आत्मा के अमरत्व का ज्ञान, ज्ञान स्वयं व्यापक रूप में होना अनुभव ज्ञान में समझ आता है |

विकसित चेतना क्रम में ही मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना विधि से अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था प्राप्त होता है | सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र, व्याख्या मानव का जीना ही होता है | इसी आधार पर यह प्रस्ताव है | मानव चेतना विधि से जो आचरण होता है वह आचार संहिता के रूप में प्रस्तुत होता है, जिससे नित्य उत्सव, नित्य विश्वास प्रकट होता है | यही अखण्ड समाज का प्रधान कार्यक्रम है | इसी कार्यक्रम के तहत अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था का प्रस्ताव है | अखण्ड समाज

सार्वभौम व्यवस्था के आधार पर ही विधि, व्यवस्था है | विधि का मतलब है आचरण | सूत्र रूप में संविधान, आचरण रूप में व्याख्या है | हर मनुष्य इसको स्वीकारता है | इसका सर्वेक्षण हर व्यक्ति कर सकता है | परम्परा विधि से अपने कर्तव्यों को मानव चेतना विधि से पहचानना होता है | फलस्वरूप सम्बंधों का निर्वाह होता है | सम्बन्धों का निर्वाह ही मूल्यों के रूप में स्पष्ट होता है | इस ढंग से चेतना विकास मूल्य शिक्षा का आवश्यकता समझ में आता है | यदि चेतना विकास मूल्य शिक्षा मानव परम्परा के गले उतरता है तो मानव इस धरती पर सुरक्षित रहना भावी है | जीव चेतना विधि से इस धरती पर रहना सम्भव नहीं है |

अभी तक मानव को जीव कोटि में माना है | आदर्शवादी विधि से भी मानव को जीव कहा है | भौतिकवादी विधि से कहे भी हैं, मानते भी हैं | इस विधि से मानव के उबरने की सम्भावना नहीं बनती अर्थात भ्रम-मुक्ति सम्भव नहीं है | भ्रम का आधार केवल शरीर को जीवन मानना ही है, मूल बिंदु के रूप में | इसके आधार पर जितना साहित्य का सम्भावना बनता है वह सब का सब मानव विरोधी है | इसका स्पष्ट गवाही के रूप में लाभोन्माद, भोगोन्माद, कामोन्माद, संघर्ष, युद्ध, सुविधा, संग्रह यही प्रचलित हुआ है | मानव को मानव समझने के पश्चात अर्थात जीवन ही प्रधान वस्तु है तथा शरीर के द्वारा मानव परम्परा में अपने को प्रकट करता है; यह बात स्पष्ट देखा गया है कि केवल मानव परम्परा में ही मानव जीवनापेक्षाओं को स्पष्ट करता है | जीवनापेक्षा विधि से ही मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना सूत्र रूप में स्पष्ट होता है तथा शरीर के द्वारा व्याख्यायित होता है | यह भी स्पष्ट होता है कि मानव, जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में ही सम्बोधित हो पाता है | केवल जीवन का नामकरण नहीं होता है | जीता हुआ मानव का अर्थात मानव सन्तान का नामकरण होता है | इस क्रम में मानव कितना भी प्रयत्न करे इस मूल बिंदु को हटाना सम्भव नहीं है |

जीवंत शरीर का सम्बंध जीवन के साथ ही रहता है | जीवन, जब शरीर को अपने प्रकटन के लिये असमर्थ मानता है तभी छोड़ता है, उसको मृतक मानते हैं | अभी तक के अध्ययन से मानव को यही माना गया है कि जीवित रूप में होने के कारण में दिल धड़कना, मांस पेशियाँ काम करना, स्नायु तंत्र अपना कार्य करना, गुर्दा, यकृत, फेफड़ा का काम पूरा होना स्वस्थ शरीर माना गया है | चिकित्सा विधि में भी यही मान्यता है | इन सब कारणों को देखने से मानव शरीर को जीवन मान लिया है, जबकि जीवन ही शरीर को चलाता है | इसका सूत्र यही बनता है कि स्वस्थ मानसिकता से स्वस्थ शरीर का संचालन बनाये रखना ही स्वस्थ मानव परम्परा है | स्वस्थ मानसिकता का मतलब है, समाधान, समृद्धिपूर्वक जी पाना | स्वस्थ शरीर का मतलब है अथवा तात्पर्य है कि सभी अंग अवयव एक दूसरे के साथ संगीत विधि से अथवा एक दूसरे के अनुकूल विधि से कार्य करते रहने से है | इस क्रम में मानवत्व, देवत्व, दिव्यत्व प्रमाणित होना स्वाभाविक है |

यही मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना का प्रमाण है | इसे आचरणपूर्वक जी कर देखा गया है, यह सहज है | गलती, अपराध करना मानव परम्परा के लिये उपयोगी नहीं है | यह भली प्रकार से समझ में आता है | यह समझ में आना और तदनुसार जी पाना ही विकसित चेतना में जीने का प्रमाण है; जिसमें प्रधान रूप में गलती, अपराध से मुक्ति, भ्रम से मुक्त होना सहज है | यही विकसित मानव परम्परा है |

अभी तक के अनुसार धन (राशी, प्रतीक मुद्रा) को विकास का आधार माना है | धन, वस्तु का प्रतीक है | धन को खाकर, पीकर मानव जीवित रह नहीं सकता अर्थात शरीर की आवश्यकता को तो पूरा नहीं कर सकता, जीवन की आवश्यकता तो बहुत दूर रहा | इस ढंग से मानव जागृतिपूर्वक जीना ही सहअस्तित्व का प्रतिरूप हो जाता है | यही सार्वभौम व्यवस्था अथवा अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था है | शुभ हो | सर्वशुभ हो! जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

- ए. नागराज | प्रणेता एवं लेखक - मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद) | भजनाश्रम, अमरकंटक, जिला-अनूपपुर (म. प्र.)